समयसार, संवर का अन्तिम अधिकार, १३२ कलश है। **अब, संवर अधिकार पूर्ण करते हुए, संवर होने से जो ज्ञान हुआ, उस ज्ञान की महिमा का काव्य कहते हैं:-**

भेदज्ञानोच्छलनकलनाच्छुद्धतत्त्वोपलम्भा-
द्रिाग-ग्राम-प्रलय-करणात्कर्मणां सम्वरेण।
बिभ्रत्तोषं परम-ममलालोक-मम्लान-मेकं,
ज्ञानं ज्ञाने नियत-मुदितं शाश्वतोद्योत-मेतत्।।१३२।।

[भेदज्ञान-उच्छलन-कलनात्] भेदज्ञान प्रगट करने के अभ्यास से.. क्या कहते हैं ? अनादि काल से यह आत्मा जो अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान का पिण्ड है, उसे अनादि से राग से एकरूप माना है। चाहे तो शुभराग हो या अशुभराग हो, वह राग है, वह आस्रव है, वह दुःख है। उस आत्मा के आनन्दस्वभाव को ज्ञान में राग का एकत्व मानकर, मिथ्यात्व सेवन कर दुःख के पन्थ में दौड़ गया है। आहाहा! यह अनादि काल से दुःख के पन्थ में है। कोई ऐसा माने कि हमें पैसा है और इज्जत है, कीर्ति है, शरीर जवान है, इसलिए हम कुछ सुखी हैं, वह अत्यन्त भ्रम है। वह दुःख के पन्थ में है। आहाहा! अपना आत्मा, कहेंगे। '**बिभ्रत्तोषं**'। भाई नहीं आये ? चन्दुभाई नहीं ?

अनादि काल से इसने निगोद के भव से (लेकर) नौवें ग्रैवेयक के भव अनन्त किये, परन्तु वह सब दुःख के पन्थ में दौड़ा हुआ था। शुभ और अशुभराग जो आस्रव है, आकुलता है, दुःख है, उसे आत्मा के स्वभाव के साथ एकत्व मानकर, दुःखी होकर, मिथ्यादृष्टि होकर संसार में भटका करता है। आहाहा! अरबोंपति, करोड़पति हो, शरीर की सुन्दर बीस वर्ष की शरीर की, पच्चीस (वर्ष की) युवा अवस्था (हो) और पाँच-पच्चीस करोड़ रुपये हों, लड़के के लड़के का बड़ा कुटुम्ब हो, धन्धा चलता हो, पाँच-पाँच लाख की आमदनी (हो), वे सब दुःख के पन्थ में हैं। आहाहा! क्योंकि राग और द्वेष के मार्ग में हैं, वे दुःख के मार्ग में हैं। इसकी उन्हें खबर नहीं है। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं कि **भेदज्ञान प्रगट करने के अभ्यास से..** अनादि से जो राग और पुण्य के, पाप के भाव (होते हैं), उनके साथ जो अभेदबुद्धि / एकत्वबुद्धि थी, वह जिसने भेदज्ञान के अभ्यास से (तोड़ी है)। यह राग मैं नहीं; मैं तो चैतन्यस्वरूप हूँ, (ऐसी दृष्टि की है)। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! **भेदज्ञान प्रगट करने के अभ्यास से..** राग का विकल्प शुभरागादि दया, दान, व्रत हों, वह भी आस्रव है, विकार है, दुःख है। आहाहा! उनसे भेदज्ञान (अर्थात्) भिन्न करने के अभ्यास से। यह धर्म करने की क्रिया! आहाहा! बाहर में तो यह माने कि इससे यह होता है।

यहाँ तो भेदज्ञान प्रगट करने का अभ्यास। ऐसा है न ? राग के विकल्प से, चाहे तो शुभराग पंच महाव्रत का हो, परन्तु वह आस्रव और दुःख है। प्रभु आत्मा उससे अन्दर भिन्न

है, ऐसा भेदज्ञान का अभ्यास प्रगट करने से। यह अनन्त काल में कभी भेदज्ञान किया नहीं। आहाहा! अज्ञानी माने भले (कि) हम सुखी हैं। पाँच-पच्चीस लाख, दो-पाँच करोड़, दस करोड़ रुपये हों, जवान शरीर ऐसा चालीस (वर्ष का) लट्ठ जैसा हो। तीन-तीन, चार-चार लड्डू खाता हो, पचा जाता हो, परन्तु वह सब दुःखी है, दुःखी हैं बेचारे। आहाहा! उसे आत्मा क्या चीज़ है, उसकी खबर नहीं और इस दुःख के पन्थ में हूँ, इसकी उसे खबर नहीं। आहाहा!

अनादि काल से निगोद के भव से लेकर काई, लहसुन, प्याज (के अवतार किये)। अब भेदज्ञान प्रगट करने का अभ्यास (करे)। अब संवर करना है न? आहाहा! राग का छोटे में छोटा कण भी हो, उससे मेरी चीज़ अन्दर भिन्न है। यह राग क्षणिक, कृत्रिम और दुःखरूप है। जबकि मैं त्रिकाल, नित्य और आनन्दरूप हूँ। समझ में आया? राग जो होता है वह कृत्रिम, क्षणिक और दुःखरूप है; जबकि प्रभु आत्मा अन्दर है, वह अकृत्रिम, अकृत, नित्य और आनन्दरूप है। आहाहा! ऐसा दो के बीच पृथक् करने का भेदज्ञान का अभ्यास करने से। **भेदज्ञान प्रगट करने के अभ्यास से..** आहाहा! अमुक क्रिया करने से, ऐसा कुछ नहीं कहा। दया पालने से या व्रत करने से, तपस्या करने से (होता है, ऐसा नहीं कहा)। ऐई! लंघन किया है न? इसने किया था, वर्षीतप किया था।

मुमुक्षु : तब खबर नहीं थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर नहीं थी! आहाहा! वर्षीतप किया था।

आहाहा! अरे! परन्तु आत्मा अन्दर कौन है? और यह राग की परिणति की क्रिया जो राग खड़ा होता है, वह कौन है? दो के बीच का ज्ञान नहीं, वह दुःखी और मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! यह भेदज्ञान को प्रगट करने के अभ्यास से। ऐसा है न? [**भेदज्ञान-उच्छलन-कलनात्**] तीन शब्द हैं। भेदज्ञान को प्रगट करने के अभ्यास से। '**कलनात्**' अर्थात् उसके अनुभव से। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! अनन्त काल से भटकता है। उसमें जवान २५, ३०, ४० वर्ष की उम्र हो, उसमें पैसा (रुपये) पाँच-पच्चीस करोड़ मिले हों और सुन्दर भैंसे जैसा शरीर हो, भैंसे जैसा! अरे रे! भाई! तुझे खबर नहीं, बापू! तू किसके आश्रय से सुखी मानता है, यह तुझे खबर नहीं। इन सबके आश्रय से तो राग

और दु:ख है। आहाहा! अब यदि तुझे सुख के पन्थ में जाना हो, दु:ख के पन्थ में अनादि से दौड़ रहा है।

भेदज्ञान को प्रगट करने के **'कलनात्'** अभ्यास से। ऐसा शब्द है। भेदज्ञान **'उच्छलन'** (अर्थात्) प्रगट करना। **'उच्छलन'** (अर्थात्) प्रगट करना। उसका **'कलनात्'**, उसका अभ्यास। अन्तर में राग से भिन्न करने का अभ्यास। आहाहा! कठिन बातें हैं, ऐसा है। वीतराग धर्म अलौकिक है। आहाहा!

[शुद्धतत्त्वउपलम्भात्] भेदज्ञान के प्रगट करने के अभ्यास से क्या हुआ? कि शुद्ध तत्त्व की प्राप्ति हुई। शुद्ध तत्त्व का अनुभव हुआ। अर्थात्? कि अनादि से पुण्य और पाप, रागादि का जो अनुभव था, उससे भिन्न पड़कर आत्मतत्त्व का अनुभव हुआ। आहाहा! भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, अतीन्द्रिय-अतीन्द्रिय अनन्त-अनन्त आनन्द और अतीन्द्रिय गुणों का पिण्ड प्रभु, भगवत्स्वरूप प्रभु आत्मा है, परन्तु कैसे जँचे? आहाहा! एक बीड़ी पीवे, वहाँ तो इसे मानो ऐसा... आहाहा! अन्दर से तलब चढ़ जाए। आहाहा! एक अच्छा पापड़ और अच्छा अचार मिला हो, उसे खाये तो ऐसा हो जाए कि आहाहा! क्या है? प्रभु! तू कहाँ गया? कहते हैं कि एक बार तो (भेदज्ञान) कर अब। अनन्त बार यह किया, एक बार उसे राग से भिन्न करने का अभ्यास तो कर, इससे तुझे शुद्ध आत्मा की उपलब्धि-प्राप्ति होगी। जो अभ्यास नहीं; राग को अपना मानने का अभ्यास है, उसमें दु:ख की प्राप्ति है और उससे (भिन्नता) करने पर तुझे आत्मा की प्राप्ति, आत्मा का अनुभव होगा। आहाहा! अब ऐसी धर्म की पद्धति। इसमें निवृत्ति कहाँ? शान्तिभाई! आहाहा! दो-पाँच लाख, दस लाख की आमदनी होती हो, लड़के कमाते हों उसमें... आहाहा! (हो जाता है)। अरे प्रभु! क्या करता है तू? दु:ख के पन्थ में गया है, प्रभु! एक बार उससे भेद करने के अभ्यास के अनुभव से तुझे आत्मा की उपलब्धि अर्थात् अनुभव होगा। आहाहा!

मुमुक्षु : एक बार या बारम्बार।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक बार करते ही हो जाएगा। पहला अभ्यास करता है, परन्तु होता है, तब एक क्षण में ही होता है। आहाहा! भाषा अभ्यास है, शुरुआत में तो ऐसा होवे न! रागादि, जिसमें पर दिशा सन्मुख की दशा (होती है), राग की, पुण्य की, दया, दान,

देश की, उसको बदलकर अपनी ओर उन्मुख करना कि वह मैं नहीं, ऐसा अभ्यास करने से तुझे आत्मा की प्राप्ति होगी, ऐसा कहते हैं। ऐसा आया न? **[शुद्धतत्त्वउपलम्भात्]** शुद्धस्वरूप का अनुभव होगा। जो राग और द्वेष के दुःख के पन्थ में तू दौड़ गया है, (वह) जहर का प्याला पीता है, बापू! और तू प्रसन्न होकर भटक रहा है। आहाहा! हीरालालभाई! आहाहा!

आत्मा के अतिरिक्त बाहर की चीज़ों में कहीं भी तुझे विशेषता, अधिकता, विस्मयता लगे, वह सब दुःखभाव, मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! उस मिथ्यात्वभाव से भेदज्ञान का अभ्यास करने से (अर्थात्) वह मैं नहीं, मैं तो चैतन्यस्वरूप हूँ। सच्चिदानन्द प्रभु, पूर्णानन्द का नाथ, अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर भण्डार, अतीन्द्रिय आनन्द से पूर्ण भरपूर भण्डार हूँ। आहाहा! यह पैसा तो खर्च भी हो जाता है। यहाँ तो अखूट ऐसी लक्ष्मी है वह। आहाहा!

[शुद्धतत्त्वउपलम्भात्] (अर्थात्) अनुभव होकर **शुद्ध तत्त्व की उपलब्धि से..** अर्थात् अनुभव से। क्रम रखते हैं। **[रागग्राम-प्रलयकरणात्] राग-समूह का विलय..** राग, द्वेष, पुण्य, पाप, यह सब राग में जाता है। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, तपस्या इत्यादि राग में जाते हैं। वह रागग्राम-राग का समूह है। वे सब राग के समूह में जाते हैं। आहाहा! अब ऐसा धर्म। राग का ग्राम। ग्राम अर्थात् समूह। सब राग का समूह है। जितने विकल्प (होते हैं), दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध, विषय, भोग, वासना। आहाहा! वह सब राग का ग्राम-समूह है, वह राग का ढ़ेर है। आहाहा! उसका प्रलय करनेवाला। ऐसे रागग्राम को प्रलय करनेवाला। प्रलय अर्थात् उसका नाश करने से। आहाहा! है न? **राग-समूह के विलय करने से..** सूक्ष्म बात तो है, भाई! आहाहा!

राग समूह के विलय करने से.. [कर्मणां संवरेण] कर्म का संवर हुआ। अर्थात् राग को रोका और स्वभाव सन्मुख में शुद्धता की दशा प्रगट की, इससे कर्म रुके। राग का समूह जहाँ रुका तो कर्म आते हुए रुके। आहाहा! यह वर्षीतप करे, इसलिए कर्म रुक जाते हैं और अपवास करे तो कर्म रुक जाते हैं, ऐसा नहीं है। वह सब राग की क्रियाएँ हैं। आहाहा! और उसमें भी धर्म होता है, ऐसा मानता है तो मिथ्यात्व का पोषक है। आहाहा! सत्य प्रभु, इससे (वे सब) झूठ का सेवन है। आहाहा!

सच्चिदानन्द प्रभु सत्स्वरूप आत्मा, अतीन्द्रिय आनन्द का भण्डार, उससे विरुद्ध मान्यता, वह सब असत्य आचरण है। आहाहा! सत्य का अनादर करनेवाला है। आहाहा! उसे कहते हैं कि रोकने से **कर्मों का संवर हुआ..** राग का समूह रुका और यहाँ संवरदशा, सम्यग्दर्शन अर्थात् आत्मा का अनुभव हुआ, तो राग से जो कर्म आता था, वह रुक गया। आहाहा! इसमें बहुत सूक्ष्म बात है।

कर्मों का संवर हुआ और कर्मों का संवर होने से,.. [ज्ञाने नियतम् एतत् ज्ञानं उदितं] ज्ञान में ही निश्चल हुआ ऐसा यह ज्ञान.. आहाहा! ज्ञान अर्थात् आत्मा। अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु, ज्ञानस्वरूप में एकाग्र होने से। है? **ज्ञान में ही निश्चल हुआ..** अपने शुद्धस्वरूप में निश्चल हुआ; राग के समूह से हट गया; इसलिए उसे कर्म का आवरण नहीं आता और यहाँ ज्ञान में स्थिर होने से, ज्ञान में नियत हुआ **ऐसा यह ज्ञान उदय को प्राप्त हुआ..** ज्ञाता-दृष्टापने की दशा प्रगट हुई। आहाहा! इसका नाम धर्म। ज्ञान, ज्ञाता-दृष्टापने की दशा... है? **ज्ञान में ही निश्चल हुआ ऐसा यह ज्ञान..** ज्ञान में अर्थात् आत्मा में निश्चल हुआ ज्ञान। जो राग में निश्चल हुआ अज्ञान था, वह मिटकर ज्ञान में ज्ञान हुआ निश्चल ज्ञान। आहाहा! **यह ज्ञान उदय को प्राप्त हुआ..** (अर्थात्) सम्यग्ज्ञान प्रगट हुआ। मैं चैतन्यमूर्ति हूँ, ज्ञातादृष्टा हूँ—ऐसा सम्यग्दर्शन में प्रगट हुआ। आहाहा! मैं राग और पुण्य और दया, दान, व्रत, काम, क्रोध, भोग के भाव, वे मेरे थे और उनमें मुझे ठीक है, यह अज्ञान, मिथ्या भ्रमणा (थी), आहाहा! वह भ्रमणा मिटकर आत्मा में आनन्द है, वह ज्ञान, ज्ञान में स्थिर हुआ। राग से हट गया, राग के समूह से हट गया और ज्ञान के, आनन्द के समूह में स्थिर हो गया। आहाहा! अब ऐसा प्रकार। **यह ज्ञान उदय को प्राप्त हुआ..**

[बिभ्रत् परमम् तोषं] कैसा ज्ञान उदय को प्राप्त हुआ? **कि जो ज्ञान परम सन्तोष को.. तोषं** है न? (अर्थात्) परम सन्तोष को **बिभ्रत्** (अर्थात्) धारण करता हुआ। आहाहा! परम सन्तोष आनन्द से परिणमता, आनन्दरूप परिणमता हुआ। आहाहा! विकार, राग के समूह में वह दुःखरूप जो परिणमन था, उसमें से हटकर आत्मस्वभाव सन्मुख आया; इसलिए उसने आत्मा के आनन्द का सन्तोष **बिभ्रत्** धारण किया। अब आनन्द को धार रखा। अब आनन्द का परिणमन हुआ। आहाहा!

यह तो अध्यात्म श्लोक है। इसमें संवर का अन्तिम श्लोक है और ज्ञान की महिमा (करते हैं)। भगवान आत्मा जहाँ ज्ञानस्वरूप प्रगट हुआ, उसकी क्या बात करना? कहते हैं। उसकी महिमा की बात करते हैं। आहाहा! अरे! अवसर मिला, तब अभ्यास किया नहीं और अवसर मिला नहीं, वहाँ भटककर सुनने को मिला नहीं। एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चोइन्द्रिय... आहाहा! अरे! मनुष्यपना प्राप्त हुआ परन्तु अनार्य देश में कच्चे बकरे खाये। अनार्य देश में बोकड़ा, समझ में आया? बकरा, छोटा बच्चा होता है न? छोटा बच्चा सीधे ऐसा कच्चा खाये। कच्चा टुकड़ा (करके खाये)। आहाहा! अब उसे ऐसे मनुष्य के अवतार मिले तो भी क्या? आहाहा! जैनकुल में अवतार होना और उसमें फिर सत्य बात कान में पड़ना, आहाहा! ऐसी दुर्लभता के काल में दुर्लभ वस्तु को प्राप्त कर ले। पैसा-फैसा प्राप्त करना, वह कोई दुर्लभ नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पाँच लाख कमाये हैं, दस लाख कमाये हैं।

मुमुक्षु : एक शास्त्र में तो ऐसा लिखा है कि धर्म सुलभ है और पैसा दुर्लभ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुलभ है। यह क्या कहा खबर है? यह बात दूसरी बात है कि पैसा सुलभ है अर्थात् इसे पूर्व का पुण्य हो तो मिलते हैं और यह (धर्म) तो पुरुषार्थ से मिलता है। है शब्द, है शास्त्र में। दस प्रकार की भावना है न? पैसा मिलना सुलभ है, (अर्थात्) कि उसमें इसका कुछ पुरुषार्थ काम नहीं करता। वह तो इसके पूर्व के पुण्य के परमाणु पड़े हों तो ऐसे संयोग दिखते हैं। दिखते हैं, हों! मिले क्या? धूल इसे मिले? इसके पास कहाँ मिलती है? इसे ममता मिलती है। इन्हें-बलुभाई को बड़ा कारखाना था। सत्तर लाख का! वह बेच डाला, निकाल डाला। आहाहा! हम कारखाने में गये थे। रामजीभाई थे, सब थे। आहार करने गये थे, तब नहीं? वहाँ आहार नहीं किया था? आहाहा! सब देखा था। अरे रे! भगवान! तेरा मार्ग कोई अलग प्रकार है, बापू! यह सब बाहर की श्मशाम की ज्वाल है। श्मशाम में जैसे अग्नि भभकारा मारती है, हड्डियाँ जली हुई होवे न, वे ताजा हों तो ऐसे अग्नि चमक.. चमक.. चमक.. होती है; इसी प्रकार भगवान आत्मा के अतिरिक्त यह सब श्मशान की चमक है। आहाहा! वे भाई कहते थे, भाई नहीं, मलूपचन्द के लड़के हैं न यह? पूनमचन्द! पाँच-छह करोड़ रुपये हैं। एक भाई को बात करते थे,

उसके पिता बैठे थे। बापू ने एक पैसे का रस कहाँ चखा है ? अर्थात् ऐसा कि वहाँ पैसे कहाँ थे ? उसके पिता के पास तीस-चालीस हजार थे। बापू को ऐसा कहे कि पैसे का रस चखा कहाँ है ? उन्हें कब थे चार करोड़ और पाँच करोड़ रुपये ? हमने इन पाँच करोड़ का रस चखा है। ज़हर का (रस चखा है।) आहाहा!

यहाँ तो जगत से दूसरी बात है, बापू! दुनिया धर्म के नाम से, व्रत, तप और भक्ति, पूजा को धर्म मानती है, वह भी अधर्म है। आहाहा! यहाँ तो उससे भिन्न पड़ा हुआ तत्त्व पूरा पड़ा है, उसे ज्ञान करके ज्ञान में **[ब्रिभ्रत् परमम् तोषं] ब्रिभ्रत्** परम सन्तोष को, आनन्द के परिणमाता हुआ। परम आनन्द को धारण करता हुआ। आहाहा! जो अनादि से राग को, पुण्य को धारण करके मेरा मानकर मिथ्यात्व में पड़ा था... आहाहा! वह भेदज्ञान करके, अतीन्द्रिय आनन्द को धारण करके अब वहाँ पड़ा है। आहाहा! ऐसी बात है। अतीन्द्रिय आनन्द का परिणमन करके उसे धार रखा है। राग का परिणमन करके जो उस राग को धार रखा था, वह इस आनन्द का परिणमन करके आनन्द को धार रखा है।

ज्ञान अर्थात् आत्मा, उसका सन्तोष अर्थात् आनन्द। **(परम अतीन्द्रिय आनन्द को) धारण करता है,..** यह **ब्रिभ्रत्** का अर्थ किया है। आहाहा! देखो, इसका नाम धर्म। जिससे राग के समूह को भिन्न करके और आनन्द के समूह का भगवान आत्मा, उसमें जिसने ज्ञान में ज्ञान की स्थिरता की, उसने अतीन्द्रिय आनन्द को धार रखा है। वह अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में पड़ा है। आहाहा! इसका नाम संवर और निर्जरा है। कहो, चिमनभाई! दुनिया बेचारी कहाँ भटकती पड़ी है ? आहाहा! कहीं मानकर, कहीं मनाती है। धर्म के नाम से कहीं मनाया हो। हैरान-हैरान हो गये हैं। संसार के नाम से तो भटकते हैं। आहाहा!

ज्ञान परम सन्तोष-परम आनन्द। जो राग और पुण्य-पाप के भाव में परम दुःख था और उस दुःख में हमें ठीक पड़ता है, ऐसा था... आहाहा! और उसने दुःख को धारण कर रखा था। वह अब गुलाँट खाता है। यह राग नहीं, मैं तो आत्मा आनन्दस्वरूप हूँ, वह अतीन्द्रिय आनन्द का गंज है। यहाँ राग का समूह था, रागग्राम (था)। आहाहा! ग्राम है न ? आ गया था। रागग्राम प्रलय करनेवाला। राग के समूह को नाश करके अनन्त-अनन्त आनन्दादि समूह को प्रगट करके। आहाहा!

[अमल-आलोकम्] जिसका प्रकाश निर्मल है.. आहाहा! भगवान आत्मा राग से भिन्न पड़कर आत्मा का अनुभव करे, वह अनुभव निर्मल है। उसमें राग और द्वेष का कण, मल, मेल नहीं है। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के परिणाम तो राग हैं, मैल हैं, मल है, दोष है। आहाहा! अरे रे! कहाँ जाना इसे? कहते हैं कि अन्तर में **[अमल-आलोकम्]** निर्मल वस्तु को आलोक (देख)। **(रागादिक के कारण मलिनता थी, वह अब नहीं है),..** **[अमल-आलोकम्]** आहाहा! निर्मल ज्ञानप्रकाश हुआ। आहाहा! **आलोकम्** अर्थात् निर्मल प्रकाश।

[अम्लानम्] जो अम्लान है (अर्थात् क्षायोपशमिक ज्ञान की भाँति कुम्हलाया हुआ-निर्बल नहीं है,..) आहा! क्षयोपशम ज्ञान है, वह तो कुम्हाला गया है। घड़ीक में रहे और घड़ीक में कुछ न रहे। आहाहा! यह तो अन्दर भगवान आत्मा सम्यग्दर्शन को प्राप्त हुआ और आत्मा के स्वभाव में से ज्ञान प्रगट हुआ, वह कुम्हलाया हुआ ज्ञान नहीं है। वह ज्ञान कुम्हलाता नहीं। आहाहा! वह खिलता ज्ञान है, वह बढ़ता, चढ़ता डिग्री से है। आहाहा! बाहर में कुछ सरीखा होवे तो ऐसा कहते है कि अपनी चढ़ती डिग्री से हैं। वहाँ यह कहाँ यह करते हो? ऐसी बातें करे।

हमारे ऐसा हुआ था। खुशालभाई का विवाह होने के बाद ऐसे मेरे विवाह की बात आयी। गृहस्थ के घर से, अच्छे लखपति के घर से। मैंने इनकार किया, मुझे ब्रह्मचर्य है, इसलिए कोई बोला कि अरे! चढ़ती डिग्री को तुम तोड़ डालते हो। आहाहा! (संवत्) १९६८ के माघ महीने की बात है। चढ़ती डिग्री कहते हैं। आहाहा! लाखों पति की लड़की आती है और तुम इनकार करते हो कि नहीं। आहाहा! चढ़ती डिग्री तो यह है। आहाहा! चढ़ता ज्ञान और चढ़ती शान्ति, राग से भिन्न पड़कर बढ़ता जाए, वह चढ़ती डिग्री है। आहाहा! दुनिया में तो ऐसा मानते हैं कि लड़की अच्छे घर में विवाहे, दो-पाँच करोड़वाले के यहाँ (विवाह हो), तो ओहोहो! वह पाँच-पच्चीस लाख लेकर आवे तो मानो क्या किया! धूल है, श्मशान है, राख है। सुन न! आहाहा!

अम्लान है। आहाहा! कहते हैं कि विकार के भाव से भिन्न पड़कर आत्मज्ञान हुआ, वह ज्ञान अब कुम्हलाता नहीं। आहाहा! आचार्य की शैली ही कोई ऐसी है। वह ज्ञान प्रगट

हुआ, सो प्रगट हुआ। (अब) वह ज्ञान केवलज्ञान लेनेवाला है। आहाहा! दूज उगी, वह पूर्णिमा होगी.. होगी और होगी। दूज उगी, वह पूर्णिमा होगी ही। इसी प्रकार जिसे आत्मज्ञान राग से भिन्न पड़कर हुआ है, वह अम्लान ज्ञान है। नहीं कुम्हलायेगा। क्षयोपशम ज्ञान कुम्हला जाता है। आहाहा! है तो यह भी क्षयोपशम, परन्तु दूसरे प्रकार का, आत्मा की ओर का। आहाहा! चलते मार्ग से अलग प्रकार दूसरा है। दुनिया की तो सब खबर है न! आहाहा! अम्लान। अम्लान अर्थात् कुम्हलाता नहीं, निर्बल नहीं।

(सर्व लोकालोक के जाननेवाला है),.. केवलज्ञान तक लिया है न! भाई! भेदज्ञान हुआ, निर्मल ज्ञान हुआ, उसमें स्थिर होते-होते केवलज्ञान हो गया। यहाँ संवर का अन्तिम परिणाम लेना है न? आहाहा! **जो एक है..** उस क्षयोपशम में तो भेद था। एक केवलज्ञान, एक समय में अनन्त आनन्द को वेदन करता हुआ केवलज्ञान प्रगट हुआ। अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द जो आत्मा का है, उस अतीन्द्रिय आनन्द को वेदन करता हुआ अनन्त केवलज्ञान प्रगट हुआ। आहाहा! अकेला है, एकरूप है, उसमें भेद नहीं। क्षयोपशम से भेद थे, वे नहीं।

[शाश्वत-उद्योतम्] आहाहा! क्या मांगलिक किया है न! वह अन्दर में आत्मा जैसे शाश्वत् है, वैसा उसका जहाँ राग से भिन्न पड़कर ज्ञान हुआ, भान, सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ, इससे उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान बढ़कर केवलज्ञान होनेवाला है, वह शाश्वत् रहनेवाला है। वह केवलज्ञान हुआ, सो हुआ। ऐसा का ऐसा अनन्त काल रहनेवाला है। आहाहा! यहाँ तो पाँच-पच्चीस करोड़ आवे और वर्ष, दो वर्ष (होवे, वहाँ) भिखारी हो जाए।

बिहार में भूकम्प हुआ था न? एक करोड़पति मनुष्य बाहर घूमने गया था। करोड़पति, हों! घूमने गया था। स्वयं के पास सात-आठ हजार रुपये का कुछ कहे, चाँदी का या घड़ी (होगी)। जहाँ आया वहाँ कुटुम्ब और मकान सब गाँव प्रलय-नाश (हो गया)। बाहर में कहीं घूमने गया था। आहाहा! एक क्षण में समाप्त। वह वापस आया, यहाँ जामनगर। वहाँ एक विनयमार्ग है। सबके पैर छुए, वह सबके पैर छुए। उसमें वापस आया, भाषण जहाँ किया, वहाँ भाषण करते-करते मर गया। उसमें यह संसार घड़ीक में कुछ-कुछ। क्षण में गरीब बनाया और क्षण में वापस यहाँ आया तो देह छूट गयी। भाषण

करता था। लोगों को पहले कुछ पैसे दिये थे, इसलिए सेठ आया है, सेठ (ऐसा करके भाषण करने खड़ा किया)। आहाहा! परन्तु यह तो किसी को होता है, ऐसा माने। हमारे (कहाँ) है? हमारे कहाँ (कुछ है)? निरोग शरीर है, दो-तीन लड्डू उड़ाते हैं, अरबी के खाते हैं, ओ... डकार (खाकर) दो-तीन घण्टे निश्चिन्तता से सोवे। धूल भी नहीं, मर गया है, सुन न! प्रभु! आत्मा आनन्द के नाथ को तूने मार डाला है। तूने पर में सुख मानकर, आत्मा में सुख है, उसे तूने मार डाला है। आहाहा! जीवित ज्योत भगवान आनन्द का नाथ है न! आहाहा! उस जीवित ज्योत का अनादर करके मर गया मुर्दा। पुण्य-पाप, राग और द्वेष मुर्दे हैं। उन्हें जीवित मानकर, सुखी मानकर बैठा है। ऐसा है—दुनिया से उल्टा है, भाई! आहाहा!

पचास करोड़ रुपये, लो! चिमनभाई के सेठ को। वहाँ अभी आया था न! मुम्बई! चिमनभाई उसमें नौकर थे न! वह आया था। पचास करोड़! वैष्णव है, महिलाएँ सब जैन हैं। बेचारों को प्रेम, इसलिए आया था। (उसके घर) गये थे न! वह आया, तब नारियल रखा, एक हजार रुपये रखे थे। घर गये तब पन्द्रह सौ रखे थे। घर में पन्द्रह सौ रखे थे। पैसा धूल में क्या गिनती थी?

मुमुक्षु : उसके भाई के लड़के का अभी जर्मनी में हार्टफेल हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा! यह तो नाशवान में बापू! कब क्या होगा? यह तो कहते हैं कि शाश्वत् ज्ञान प्रगट हुआ। आहाहा! राग से भिन्न पड़कर सम्यग्दर्शन प्रगट किया, संवर प्रगट किया, उतना कर्म का आना रोक दिया, पश्चात् स्वरूप में स्थिर होने से केवलज्ञान हुआ, वह केवलज्ञान शाश्वत् रहेगा। ऐसा का ऐसा प्रगटा, तब से वह अनन्त काल (रहेगा)। अनन्त-अनन्त जिसका अन्त नहीं। आहाहा!

[शाश्वत-उद्योतम्] जिसका उद्योत शाश्वत है (अर्थात् जिसका प्रकाश अविनश्वर है)। ओहोहो! गजब मांगलिक श्लोक! दुनिया के सामने सब रखा है। दुनिया बड़े चक्रवर्ती के राज्य पड़े हों। ब्रह्मदत्त मरकर सातवें नरक गया। छियानवें हजार तो स्त्रियाँ, छियानवें करोड़ सैनिक, सोलह हजार देव सेवा करें, उसे हीरे का क्या कहलाता है? पलंग, पलंग, हीरे के पलंग में सोता हो और सोलह हजार देव सेवा करते थे, (वह)

मरकर सातवें नरक में गया। अभी सातवें नरक में है। आहाहा! बापू! उस नरक के एक क्षण के दु:ख, भाई! देखनेवाले को रुदन आवे, ऐसे दु:ख हैं। भाई! तूने ऐसे दु:ख अनन्त बार सहन किये हैं, बापू! तुझे हर्ष किसका आता है? तुझे बाहर का हर्ष किसका आता है? आहाहा! बाहर की चीज़ में तो तेरी अपेक्षा अधिकपना, विशेषपना कैसे भासित होता है? तू महा अधिक भगवान है अन्दर और उसका ज्ञान तथा भान होने पर केवलज्ञान होकर फिर शाश्वत् रहता है। अनन्त-अनन्त काल, आदिरहित अनन्त काल। आहाहा! बहुत मांगलिक किया। आहाहा!

टीका : इस प्रकार संवर (रंगभूमि में से) बाहर निकल गया। अर्थात् संवर पूरा हो गया और केवलज्ञान हो गया। अब संवर करना रहा नहीं। संवर निकल गया। आहाहा!

भावार्थ : रंगभूमि में संवर का स्वांग आया था.. संवर अर्थात् धर्म की दशा रागरहित निर्मल.. निर्मल.. निर्मल भेदज्ञान दशा—ऐसा जो संवर; आनन्द, शान्ति के वेदनसहित जो संवर प्रगट हुआ, वह स्वांग पूरा हो गया। वह **स्वांग आया था, उसे ज्ञान ने जान लिया इसलिए वह नृत्य करके बाहर निकल गया।** अर्थात् संवर पूरा हो गया, केवलज्ञान हो गया। हिन्दी।

भेदविज्ञानकला प्रगटै, तब शुद्धस्वभाव लहै अपना ही,
राग-द्वेष-विमोह सबहि गलि जाय, इमै दुठ कर्म रुकाही;
उज्ज्वल ज्ञान प्रकाश करै बहु तोष धरै परमाताममाहीं,
यों मुनिराज भली विधि धारतु, केवल पाय सुखी शिव जाहीं।।

उसमें कहा है न, कर्म धारण किया था न? आहाहा! **भेदविज्ञानकला प्रगटै,..** आहाहा! राग के कण से (भिन्न)। शरीर, वाणी वह तो मिट्टी और जड़ धूल है। वह तो श्मशान की राख होनेवाली है। आहाहा! परन्तु अन्दर राग, पुण्य-पाप के भाव (होते हैं), उनसे भेदज्ञान करने पर जो सम्यग्दर्शन और संवर होता है। **तब शुद्धस्वभाव लहै अपना ही,..** तब अपना शुद्धस्वभाव प्राप्त करता है। जो राग को, पुण्य-पाप को अनादि से प्राप्त करता था, उनसे भिन्न पड़कर। आहाहा! दुनिया से सब उल्टा है। आहाहा! **भेदविज्ञानकला**

प्रगटै, तब शुद्धस्वभाव लहै अपना ही,.. अपने शुद्धस्वभाव की प्राप्ति करे। **राग-द्वेष-विमोह सबहि गलि जाय,..** राग-द्वेष और विमोह (अर्थात्) मिथ्यात्व, **सबहि गलि जाय,..** (अर्थात्) नाश हो जाए। **इमै दुठ कर्म रुकाही;..** तुष्ट कर्म रुक जाते हैं। संवर आने पर आत्मा की स्थिरता होने से कर्म रुक जाते हैं। आहाहा!

उज्ज्वल ज्ञान प्रकाश करै.. अन्तर की चैतन्य की जलहल ज्योति, चैतन्य के प्रकाश की मूर्ति, केवलज्ञान का कन्द प्रभु, वह पर्याय में उज्ज्वल ज्ञान प्रकाश करता है। आहाहा! **बहु तोष धरै..** बहुत आनन्द धारण करे, बहुत आनन्दरूप परिणमे, अतीन्द्रिय आनन्दरूप से ज्ञान परिणमे। संवर होने पर उसके फल में अतीनिद्रय आनन्दरूप परिणमे। आहाहा! पुण्य-पाप और आस्रव के फल में दु:खी होता है। बाहर के संयोग मिले, उसमें प्रसन्न होता है, दु:खी होता है, आहाहा!

उज्ज्वल ज्ञान प्रकाश करै बहु तोष.. आनन्द परिणमे, आनन्द धारण करे। **परमातममाहीं,..** परमात्मा आत्मा में आनन्द को धारण करे। उसमें आनन्द का परिणमन करे। उसी और उसी में जो उल्टा पड़ा, राग-द्वेष और दु:ख का परिणमन करता था, वह सुलटा पड़ा, वह आत्मा में आनन्द के सन्तोष को धारण करता है। आहाहा! **यों मुनिराज..** मुनि की मुख्य बात है न! **भली विधि धारतु,..** इसी भली विधि को धारण करते हैं। जो कही थी, उस संवर की (विधि को) धारक। **केवल पाय सुखी शिव जाहीं।** लो! केवलज्ञान पाकर शिव-सुखी शिव होते हैं। शिव जाय अर्थात् मोक्ष होता है। आहाहा!

इस प्रकार श्री समयसार की (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत श्री समयसार परमागम की) श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्यदेवविरचित आत्मख्याति नामक टीका.. आत्मप्रसिद्धि। इस टीका का नाम आत्मख्याति है। आत्मा की प्रसिद्धि होती है। जो अनादि से राग और विकार की प्रसिद्धि थी, उसका नाश करके आत्मा की प्रसिद्धि होती है। आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, शान्तस्वरूप, वीतरागमूर्ति प्रभु है, उसकी प्रसिद्धि होती है, उसका नाम धर्म कहा जाता है। आहाहा! अरे रे! ऐसा सुनने को मिलता नहीं, वहाँ बेचारा क्या करे? ऐसा का ऐसा बाहर में कुछ सुविधा देखे, वहाँ सन्तुष्ट हो जाता है और (मानता है कि) ऐ.. हम सुखी हैं।

एक बार कहा था न ? नानालालभाई के रिश्तेदार थे, 'चुड़गर' थे। हमारे रिश्तेदार सुखी हैं, कहे। करोड़पति नानालालभाई, राजकोट। जसाणी... जसाणी... ! उसके समधी यहाँ आये थे। आवे न, सब आवे तो बहुत बार। (तब कहते थे कि) हमारी समधी सुखी हैं। कहा, सुखी की व्याख्या क्या ? सुखी की व्याख्या क्या ? यह पैसा धूल मिले, करोड़पति, वह सुखी ? पागल, वह पागल, पागल दुनिया पूरी पागल। पैसे वाले को सुखी मानती है। आहाहा ! पागल है, बड़ी मूर्खता है।

यह तो आत्मा में से आनन्द आया, कहते हैं। धर्म करते हुए, राग से भिन्न पड़ने पर, विकल्प से भिन्न पड़ने पर निर्विकल्प आनन्द का अनुभव आने से पूर्ण आनन्द प्रगट हुआ, वह शाश्वत् रहनेवाला है। आहाहा ! यह अधिकार पूरा हुआ।

अब, सर्व स्वाँग को यथार्थ जाननेवाले सम्यक्ज्ञान को मंगलरूप जानकर, आचार्यदेव मंगल के लिये प्रथम उसी—निर्मल ज्ञानज्योति को ही-प्रगट करते हैं:-

श्लोकार्थ : [परः संवरः] परम संवर, [रागादि-आस्रव-रोधतः] रागादि आस्रवों को रोकने से [निज-धुरां धृत्वा] अपनी कार्य-धुरा को धारण करके (-अपने कार्य को यथार्थतया सँभालकर) [समस्तम् आगामि कर्म] समस्त आगामी कर्म को [भरतः दूरात् एव] अत्यन्ततया दूर से ही [निरुन्धन् स्थितः] रोकता हुआ खड़ा है; [तु] और [प्राग्बद्धं] पूर्वबद्ध (संवर होने के पहले बँधे हुवे) [तत् एव दग्धुम्] कर्म को जलाने के लिये [अधुना] अब [निर्जरा व्याजृम्भते] निर्जरा (-निर्जरारूपी अग्नि) फैल रही है [यतः] जिससे [ज्ञानज्योतिः] ज्ञानज्योति [अपावृत्तं] निरावरण होती हुई (पुनः) [रागादिभिः न हि मूर्छति] रागादिभावों के द्वारा मूर्च्छित नहीं होती-सदा अमूर्च्छित रहती है।

भावार्थ : संवर होने के बाद नवीन कर्म तो नहीं बँधते। और जो कर्म पहले बँधे हुए थे, उनकी जब निर्जरा होती है, तब ज्ञान का आवरण दूर होने से वह (ज्ञान) ऐसा हो जाता है कि पुनः रागादिरूप परिणमित नहीं होता-सदा प्रकाशरूप ही रहता है।।१३३।।

प्रवचन नं. २६८, श्लोक-१३३ रविवार, आषाढ़ शुक्ल ७
दिनाङ्क ०१-०७-१९७९

अब, निर्जरा (अधिकार)। संवर के पश्चात् निर्जरा। यह लोग तो ऐसा करे, यह अपवास किया और यह 'बलुभाई' ने वर्षीतप किया था न? तप किया, इसलिए निर्जरा हो जाएगी, ऐसा। निर्जरा के लिये।

मुमुक्षु : पहले साहेब आप कहते थे न कि धर्म हो तो करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अर्थात् निर्जरा, इसलिए अपवास किया है - ऐसा कहते हैं। आहाहा!

संवर अर्थात् शुद्धि की उत्पत्ति। आस्रव अर्थात् अशुद्धि का भाव। संवर अर्थात् निर्मल शुद्धि की उत्पत्ति और निर्जरा अर्थात् शुद्धि की उत्पत्ति की वृद्धि। समझ में आया? आहाहा!

निर्जरा अर्थात् क्या ? निर्जरा के तीन प्रकार हैं—एक तो आत्मा की शुद्धि हुई हो—संवर; उसकी शुद्ध में वृद्धि हो—शुद्धि की वृद्धि हो, वह निर्जरा; एक, अशुद्धता टले, उसे भी निर्जरा कहते हैं और एक कर्म गले, उसे भी निर्जरा कहा जाता है, परन्तु वास्तविक निर्जरा तो शुद्धि की वृद्धि (होवे), वह है। संवरपूर्वक निर्जरा - ऐसी यहाँ व्याख्या है। संवरपूर्वक निर्जरा। संवर न हो, वहाँ निर्जरा होती नहीं। अभी संवर ही प्रगट नहीं हुआ, भेदज्ञान ही नहीं, वहाँ निर्जरा-फिर्जरा कैसी ? आहा! यह रस छोड़ा है और अमुक खाने का छोड़ दिया, यह तीन अपवास किये हैं और बारह महीने का वर्षीतप किया, इससे निर्जरा हो गयी, सब ढ़ोंग है। आहाहा!

यहाँ तो पहले संवर हो, उसकी-शुद्धि की वृद्धि हो, उसे निर्जरा कहते हैं। आहाहा! निर्जरा - 'नि' (अर्थात्) विशेष झरना। कर्म का झरना, अशुद्धता का झरना और शुद्धता का बढ़ना - इन तीनों को निर्जरा कहते हैं। आहाहा!

रागादिककूं मेटि करि, नवे बंध हति संत।
पूर्व उदय में सम रहे, नमूं निर्जरावंत।।

राग-द्वेष के परिणाम को रोकने से, रोध अर्थात् रोकने से, अटकाने से **'नवे बंध हति संत।'** नये बन्ध को हनन कर डालने से। एक तो पहले रागादि के रोध से अर्थात् नया कर्म आता नहीं और पुराना कर्म जो **'नवे बंध हति संत।'** जो बन्ध था, उसे घात डालता है। **'पूर्व उदय में सम रहे,..'** उसे पूर्व का जरा उदय आवे, उसमें समता रखे। आहाहा! **'नमूं निर्जरावंत।'** उस निर्जरावंत को नमस्कार करता हूँ, कहते हैं। आहाहा! जिसने **'नवे बंध हति संत।'** नया बन्ध घात डाला, नया बन्ध होता नहीं, ऐसा। **'रागादिककूं मेटि करि,..'** नया बन्ध होता नहीं और पूर्व के उदय में आवे, (उसमें) सम रहता है, ऐसा।

प्रथम टीकाकार आचार्यदेव कहते हैं कि 'अब निर्जरा प्रवेश करती है।' जैसे नाटक में वेष प्रवेश करते हैं न ? उसमें यह स्वाँग लिया है। यहाँ नाटक की अपेक्षा ली है। संवर का वेष पूरा हुआ, अब निर्जरा का वेष आता है। **'अब निर्जरा प्रवेश करती है।' यहाँ तत्त्वों का नृत्य है;...** आहाहा! तत्त्व नाचते हैं। आहाहा! आत्मा ज्ञानानन्द तत्त्व है, वह नाचता है अर्थात् परिणमता है। आहाहा! **तत्त्वों का नृत्य है; अतः जैसे नृत्यमंच**

पर नृत्य करनेवाला स्वाँग धारण कर प्रवेश करता है... निर्जरारूप स्वाँग धारण (करके) आया। **उसी प्रकार यहाँ रंगभूमि में निर्जरा का स्वाँग प्रवेश करता है।** आहाहा! अखाड़े की तरह रंगभूमि स्थापित की है न? नाटक, नाटक, समयसार नाटक किया।

अब, सर्व स्वाँग को यथार्थ जाननेवाले... सब स्वाँग को यथार्थ जाननेवाला। आहाहा! मोक्ष भी स्वाँग है, निर्जरा भी स्वाँग है, संवर भी स्वाँग है-वेष है। आहाहा! उसे **जाननेवाले सम्यक्ज्ञान को मंगलरूप जानकर...** मंगलरूप वह है। सम्यग्ज्ञानरूपी मंगल पहले प्रवेश करता (है)। आहाहा! (मंगलरूप) **जानकर आचार्यदेव मंगल के लिये प्रथम उसी-निर्मल ज्ञानज्योति को ही-प्रगट करते हैं:-** जो निर्जरा को भी जाननेवाला ज्ञान है, संवर को जाननेवाला है। जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला ऐसा जो भगवान आत्मा, वह प्रगट होता है। उसमें प्रथम ज्ञानज्योति को प्रगट करते हैं।

विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)